"भूषण की भाषागत विशेषताएँ"

भूषण जिस समय काव्य रचना कर रहे थे उस समय काव्य भाषा के रूप में ब्रजभाषा का प्रयोग होता था। रीतिकालीन कवियों ने ब्रजभाषा का प्रयोग शृंगार वर्णन में अधिक किया है, जिसके कारण वह कोमलकान्त एवं सुकुमार बन गई थी। भूषण ने इसी कोमलकान्त एवं सुकुमार ब्रजभाषा अपने भावानुकूल ढालने का प्रयास किया है और इसे इतना कठोर एवं ओजस्वी बना दिया है कि वह अपनी सहज सुकुमारता का परित्याग करके भूषण की कल्पना के अनुसार भावानुकूलता ग्रहण कर लिया। भूषण की भाषागत विशेषताओं को निम्न रूप में देखा जा सकता है—

ओजस्विता —

भूषण की काव्य भाषा में ओज एवं उत्साह से परिपूर्ण है। उसके एक-एक शब्द से ओज छलकता-सा जान पड़ता है क्योंकि भूषण ने अपने काव्य में वीर रस का निरूपण करते समय जिस शौर्य एवं पराक्रम के गीत गाए हैं, उसके अनुकूल भाषा का गठन किया है। इसलिए भूषण की काव्य भाषा में ओजस्विता कूट-कूट कर भरी पड़ी है, उदाहरण स्वरूप इस छन्द को देखा जा सकता है, जो ओजगुण से सम्पन्न है—

"गरुड़ को दावा सदा नाग के समूह पर,
दावा नाग-यूथ पर सिंह सरताज को।
दावा पुरहूत को पराहन के यूथ पर,

1.

पच्छिम के गोल पर दावा सदा बाज को ॥"

नादात्मकता —

भूषण ने अपनी वीर भावना को व्यक्त करने के लिए ऐसी भाषा का प्रयोग किया है, जिसमें अनुरणन वाले शब्दों की प्रधानता है अर्थात् जिस भाषा में ऐसे शब्द अधिक मात्रा में प्रयुक्त हुए हैं, जो एक-सी ध्वनि, एक-से स्वर एवं एक-से व्यंजनों से निर्मित हुए हैं। इन शब्दों की स्वर-मैत्री एवं व्यंजन-मैत्री से भूषण की कविता अपना नादात्मक सौन्दर्य बिखेरती हुई सहृदयों को सहसा अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है —

"बाने फहराने घहराने घंटा गजन के,
नाहीं ठहराने राव-राने देस-देस के।
नग भहराने, ग्राम-नगर पराने,
सुनि बाजत निसाने सिवराज जू नरेस के॥"

द्वित्व वर्णों की प्रधानता —

भूषण की काव्य भाषा में द्वित्व वर्णों, 'र' संयोग वाले अक्षरों, सामासिक पदों, ट, ठ, ड, ढ की अधिकता वाले वर्णों, संयुक्ताक्षरों आदि की प्रधानता है। जो वीर रस के निरूपण के लिए एवं वीर भाव की अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त मानी गई है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं —

(i) "हैं-वर हरट्ट साजि गै-वर गरट्ट सबै,
पैदल के ठट्ट फौज जुरी तुरकाने को।"

(ii) "खग्ग-खगराज महराज सिवराज जू को,
अखिल भुजंग-मुगलद्दल निगलिगो।"

(iii) "कलियुग जलधि अपार उद्ध अधरम्म ऊर्मिमय।
लच्छनि लच्छ मलिच्छ कच्छ अरु मच्छ मगर च्चय॥"

युगानुकूलता —

भूषण ने अपनी काव्य भाषा को युग के अनुकूल सभी के समझने एवं जानने योग्य बनाने के लिए उसे तत्कालीन प्रचलित शब्दों से परिपूर्ण बनाया है। भूषण ने उसकी शुद्धि-अशुद्धि पर अधिक ध्यान न देकर तथा उसके परिमार्जित एवं परिनिष्ठित रूप की चिन्ता न करके उन सभी लोक प्रचलित शब्दों को अपना लिया है, जो उस समय राज-दरबारों, सामाजिक कार्यों, धार्मिक व्यवहारों, राजनीतिक दाँव-पेंचों आदि में प्रयुक्त होते थे। इसलिए भूषण की भाषा को अपने युग का दर्पण कहा जाता है। उसमें हमें तत्कालीन युग का यथार्थ रूप देखने को मिलता है। भूषण की भाषा में अरबी-फारसी, मराठी, प्राकृत एवं संस्कृत के तत्सम शब्दों की प्रधानता देखने को मिलती है, जैसे इस छन्द में —

"बद्दल' न होहिं दल'दच्छिन' घमन्ड माँहि,
घटा हू न होहिं, दल सिवाजी हँकारी के।
दामिनि दमक नाहिं, खुले खग्ग बीरन के,
वीर सिर छाप लखु तीजा असवारी के।
देखि-देखि मुगलों की हरमैं भवन त्यागें,
उझकि उझकि उठें बहत बयारी के।
दिल्लीपति भूलि कहें बात घन घोर घोर,
बाजत नगारे जे सितारे गढ़धारी के॥"

इस छन्द में बद्दल, खग्ग, दच्छिन आदि शब्द

प्राकृत के एवं अपभ्रंश भाषा के हैं। तीजा, मुगल, हरम आदि शब्द अरबी-फारसी के हैं। बीरन, बयारी आदि शब्द ब्रजभाषा की बोलचाल के रूप को प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार से भूषण की भाषा में तत्कालीन युग में प्रचलित भाषाओं के शब्दों का प्रयोग होने के कारण पूर्णतया युगानुकूलता विद्यमान है।

रसानुकूलता —

भूषण के काव्य का अंगीरस वीर है। वीर रस का स्थायी भाव 'उत्साह' है तथा उत्साह के निरूपण के लिए प्रायः ऐसी भाषा का प्रयोग होना चाहिए, जो स्वयं उत्साह भरी हो तथा जिसके प्रत्येक शब्द से तेज एवं पौरुष झलकता हुआ दृष्टिगोचर हो। भूषण की भाषा में प्रायः ऐसे ही शब्दों की बहुलता है —

"छूटत कमान और तीर गोली बानन के,
मुसकिल होत मुरचानहू की ओट मैं।
ताही समै सिवराज हुकुम कै हल्ला कियो,
दावा बाँधि द्वेषिन पै वीर भट जोट मैं॥"

लाक्षणिकता —

भूषण ने व्यंग्य एवं लक्षणा के सहारे अपनी भाषा को लाक्षणिकता से भी सुसज्जित किया है। इसकी अभिव्यक्ति के लिए भूषण ने मुहावरों एवं लोकोक्तियों का सहारा लिया है। मुहावरे एवं लोकोक्तियाँ प्रायः भाषा की सौन्दर्य में सहायता करती हैं, क्योंकि इनका रूप छोटा होते हुए भी इनमें भाव-गाम्भीर्य अधिक होता है, जिससे

सुनने एवं पढ़ने वाला फड़फड़ाता रहता है, किन्तु उससे कुछ कहते नहीं बनता है। उनके अर्थ भी अभिधा शक्ति से नहीं आने आते, बल्कि लक्षणा शक्ति से ही समझ में आते हैं, क्योंकि वे लक्ष्यार्थ होते हैं। भूषण ने ऐसे लक्ष्यार्थपूर्ण मुहावरे एवं लोकोक्तियों का प्रयोग करके अपनी भाषा में लाक्षणिकता का विधान किया है, जैसे —

(i) "सौ सौ चूहे खाय कें बिलारी बैठी तप कों।"
(ii) "काल्हिकें जोगी कलींदे से खप्पर।"
(iii) "स्याम मुख नौरंग सिपाह मुख पियरे।"
(iv) "घाती घरकति हैं खरी अखिल खल की।" आदि।

संश्लिष्टता —

भूषण ने अपने काव्य सौन्दर्य में निखार लाने के लिए ऐसी भाषा का भी प्रयोग किया है, जिसमें किसी घटना या स्थिति का चित्रण करने के लिए संश्लिष्ट पदों का उपयोग किया जाता है। भूषण ने चमक अलंकार पर आश्रित संश्लिष्ट भाषा का ऐसा प्रयोग किया है, जिसे सुनकर, पढ़कर एवं समझकर श्रोता एवं पाठक फड़क उठते हैं, जैसे इस छन्द में —

"ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहनवारी,
ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहाती हैं।
कंद मूल भोग करैं कंद मूल भोग करैं,
तीन बेर खाती सो तो तीन बेर खाती हैं।"

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भूषण की भाषा पर अपना विचार प्रगट करते हुए लिखा है, "भूषण की भाषा में ओज की मात्रा तो पूरी है, पर वह

अधिकतर अव्यवस्थित है। व्याकरण का उल्लंघन प्रायः है और वाक्य रचना भी कहीं-कहीं गड़बड़ है।" पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के अनुसार "भूषण की भाषा एक प्रकार की मिश्रित भाषा है। इनकी भाषा में ऐसी खिचड़ी है कि प्रायः सभी प्रकार के शब्द मिल सकते हैं। शब्दों को तोड़ने में भी भूषण ने कहीं-कहीं ज्यादती की है।"

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि भूषण की भाषा में वीर रस के अनुरूप परुषता, ओजस्विता, नादात्मकता, युगानुकूलता, रसानुकूलता, संश्लिष्टता आदि गुण तो पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है, किन्तु वह अपरिमार्जित, अव्यवस्थित एवं अपरिनिष्ठित ब्रजभाषा है।